रोचक ऐतिहासिक कहानियां

केदार नाथ कोमल

रोचक ऐतिहासिक कहानियां

केदार नाथ कोमल

प्रथम संस्करण : आषाढ़ 1908 (जुलाई 1986)
द्वितीय संस्करण : फाल्गुन 1910 (मार्च 1989)
तृतीय संस्करण : भाद्रपद 1911 (सितम्बर 1989)
चतुर्थ संस्करण : कार्तिक 1919 (अक्टूबर 1997)

© प्रकाशन विभाग

मूल्य : 15 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग
- पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001
- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीम भाई रोड़, बालार्ड पायर, मुंबई-400038
- 8-एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600009
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004
- एफ विंग, प्रथम तल, केन्द्रीय सदन, कोरा मंगला, बंगलौर-560034
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- 27/6, राममोहन राय मार्ग, कृषिभवन के पीछे, लखनऊ-226019

विक्रय काउंटर ● प्रकाशन विभाग
- पत्र सूचना कार्यालय, 80-मालवीय नगर, भोपाल (म.प्र.)-462003
- पत्र सूचना कार्यालय, सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड़, इंदौर (म.प्र.)
- पत्र सूचना कार्यालय, के-21, नंद निकेतन, मालवीय नगर, 'सी' स्कीम, जयपुर (राजस्थान)-302003

मुद्रित : नीलम ऑफसेट, 11/227, गीता कालोनी, दिल्ली - 110031

प्रकाशकीय

भारत का इतिहास शौर्य और वीरता का इतिहास है। देश के लिए हंसते-हंसते अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले वीरों की अनगिनत कहानियां यहां के कण-कण में बिखरी पड़ी हैं। कुछ सदियों की दुर्भाग्यपूर्ण दासता को हमने उखाड़ फेंका। सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में संसार का मार्गदर्शन करने वाला हमारा यह देश, जो किसी समय सोने की चिड़िया कहलाता था, अब विश्व के रंगमंच पर अपना प्राचीन गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने के लिए एक बार फिर तेजी से आगे बढ़ रहा है।

देश की अखंडता और एकता हमेशा से ही समय की सबसे बड़ी मांग रही है। इनको मजबूत करना हमारा कर्तव्य है। आज के बच्चे कल के नागरिक होंगे। उनके अन्दर देश-प्रेम और त्याग की भावना उत्पन्न हो, इसी उद्देश्य से प्रकाशन विभाग समय-समय पर ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करता रहा है जो उन्हें इस पथ पर चलने के लिए प्रेरित करें।

यह पुस्तक भी इसी दिशा में हमारा एक और प्रयास है। आशा है विद्वान लेखक तथा कवि द्वारा लिखित हमारे इतिहास की इन सच्ची कहानियों से हमारे बच्चों को मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा और देशभक्ति की प्रेरणा भी प्राप्त होगी।

डा० श्याम सिंह शशि
निदेशक

अनुक्रम

		पृष्ठ
1.	आखिरी भेंट	1
2.	सच्चा साथी	8
3.	आजादी की किरणें	12
4.	एक अनाथ लड़की	16
5.	बेड़ियों में जकड़ा शेर	21
6.	नलवा	24
7.	अनमोल रत्न	28
8.	नन्हा वीर	32
9.	योद्धा संत	35
10.	एक स्वतंत्रता सेनानी	37

आखिरी भेंट

छत्रपति शिवाजी के मन में अन्तर्द्वन्द्व हो रहा था। शिवाजी सोच रहे थे कि परिवर्तन जीवन का दूसरा नाम है। कितनी जल्दी-जल्दी सब बदल रहा था... 5 दिसंबर, 1659 को सईबाई, उनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया। मृत्यु ने भी क्या समय देखा। सब दरबारियों के हृदय भारी हो गये। वे कल्पना करने लगे—महाराज को कितना दुःख हुआ होगा। परन्तु शिवाजी शान्त चित्त अपने कार्य में डटे रहे, मानो कह रहे हों,—"भाई, मृत्यु तो जीवन की अति सामान्य और सुनिश्चित बात है। उसकी इतनी चिन्ता क्यों करें। और वह भी हाथ में काम छोड़कर, निःसंशय वह मेरी प्रिय पत्नी थी, परन्तु अब रोने से क्या वापस आ जाएगी? और रोने को फुरसत कहां है? यहां तो प्रियतर और प्रियतम देश-धर्म का कार्य सामने खड़ा है...." शिवाजी की शान्त एवं दृढ़ मुद्रा बिना बोले ही मानो जीवन की कोटि-कोटि महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की शिक्षा दे रही थी। शायद शिवाजी सो रहे थे या जाग रहे थे। बीते हुए कल के चित्र एक-एक करके उनके सामने उभरने लगे—सन् 1659 के अप्रैल का अंतिम सप्ताह। अफजल खां का बीजापुर पर आक्रमण—12,000 अश्वारोही सैनिक, 10,000 पैदल सैनिक, 75 बड़ी तोपें, 400 छोटी तोपें। तुलजापुर में देवी का प्राचीन मंदिर। हां, उस देवी की मेरे ऊपर विशेष कृपा रही है। उसने मुझे दर्शन भी दिये हैं। मेरे मन में असीम शक्ति का संचार कराती थी। यह क्या? अफजल खां ने वह मंदिर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मूर्ति तोड़ दी। क्या हिन्दुओं की धर्म-श्रद्धा और आदर तथा भक्ति समाप्त हो गई? मन विचलित हुआ। राजगढ़ छोड़कर हम प्रतापगढ़ चले गये। गुप्तचर कितने सतर्क हैं—अफजल खां हंसकर बोला, "लो यह चूहा अभी से भागने लगा।" अफजल खां ने पैंतरा बदला। वह पंढरपुर पहुंचा। रास्ते में गांवों, मंदिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। फलटण नामक स्थान। मेरा साला, सईबाई का सगा भाई, बजाजी निम्बालकर। खां ने उसे पकड़ा। शारीरिक पीड़ायें दीं। अपमानित किया। मुसलमान बनाया। फिर भी वह संतुष्ट नहीं हुआ। उसे मृत्यु दण्ड देना चाहा। उसने क्या बिगाड़ा था उसका? शायद खां मुझे चिढ़ाना चाहता है। वह प्रादेशिक, धार्मिक तथा पारिवारिक अत्याचार ढाने पर तुला हुआ है। अफजल खां की सेना में नाइकजी राजे-मेरा मित्र-कितना प्रभावशाली तथा दूरदर्शी है। यदि वह समय पर मदद न करता तो बजाजी निम्बालकर कब का समाप्त....खां की सेना में बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू और मराठे हैं। परन्तु

दासता के कारण अनेकों के मन ही मर गये हैं । वे अंदर ही अंदर महसूस कर रहे हैं कि सब खराब काम हो रहा है, परंतु····अफजल खां को साठ हजार स्वर्ण मुद्राएं जुर्माना देना पड़ा····इसके अतिरिक्त निम्बालकर ने अपने देशमुखी अधिकार गिरवी रख दिये । अफजल खां मलवड़ी में लूट-खसोट करता हुआ वाई पहुंचा । सावन की धुआंधार वर्षा, गहन अरण्य, चारों ओर मुस्कराते पर्वत, विश्राम, वर्षा का आनंद । मौज, मेला, नहीं, मैं युद्ध नहीं होने दूंगा । फिर भी मुझे हर कीमत पर विजय प्राप्त करनी है । विजय, शत-प्रतिशत विजय । अकारण धनहानि और प्राणहानि नहीं होनी चाहिए । धन तथा प्राण-सेना के वीर हमारे देश-बान्धव ही तो हैं, समाचार आते रहते हैं । गुप्तचर कितने सतर्क हैं। अफजल खां का समाचार पाकर सब लोग राजगढ़ बुला लिए गये—गोमाजी, नाईकपान सम्बल, कृष्णाजी नाईक, मोरोपंत पिंगले, निलोपंत सोनदेव, अण्णाजी दत्तो, सोनोपंत डबीर, गंगाजी मंगाजी पालकर, रघुनाथपंत अत्रे, प्रभाकर भट्ट राजोपाध्याये, तानाजी मालूसरे, येसाजी कंक आदि । सभी लड़ने को आतुर थे····ठीक है, जैसा तुम कहते हो, मान लेते हैं, परंतु—"युद्ध करेंगे और अफजल खां को मारेंगे । विजयी हुए तो मैं रहूंगा ही, परंतु यदि मेरा प्राणनाश भी हो जाये तो मेरे बेटे, बालक सम्भाजी को आप सिंहासन पर बिठा देना····" मेरी मृत्यु की कल्पना मात्र से वे डर गये। नहीं, नहीं-युद्ध की आवश्यकता नहीं-मेरी बात का समर्थन हुआ । तय हुआ कि राजमाता जीजाबाई और मेरा बालपुत्र सम्भाजी राजगढ़ में रहेंगे और मैं प्रतापगढ़ में । वहीं से मैं युद्ध का संचालन करूंगा । जीजाबाई बोलीं—"युद्ध करो, परंतु किसी भी हालत में खां से मिलने न जाना । वह बहुत कपटी है । वह तुम्हें जीवित नहीं छोड़ेगा ।" मैंने उत्तर दिया, "माताजी, मेरी इतनी उम्र हो गई । क्या कभी किसी मुसलमान सरदार या राजा से कभी मिलने गया हूं ? परंतु इस बार···· शायद आखरी बार, मुझे ऐसा करना पड़ेगा। मंदिरों को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ अफजल खां आ रहा है : उसे सबक सिखाना ही पड़ेगा । अतः आप उससे मिलने की आज्ञा दें । मुझे जाना ही होगा ।" जीजाबाई, इकलौते बेटे की माता, बोलीं, "अफजल खां एक विशालकाय राक्षस ! उसी ने उकसा-उकसा कर मेरे पति को कैद करवाया, हाथों-पैरों में शृंखलायें डलवाकर हर प्रकार से अपमानित किया—बीजापुर की सड़कों पर घुमाया था····वैसे तो मैंने छः पुत्रों को जन्म दिया, परंतु चार शिशु अवस्था में ही चल बसे । दो बचे । सम्भाजी और तुम, शिवाजी····चार साल पूर्व कनकगिरी के युद्ध में उसी दुष्ट अफजल खां ने धोखा देकर मेरे लाड़ले, सम्भाजी को मारा । अब अकेला तू, शिवाजी···· मेरा इकलौता बेटा । कितनी दुःख की बात है कि अफजल खां घर बैठे हमारे पास आ रहा है—गायों को [illegible] हुआ, मंदिरों को तोड़ता-फोड़ता हुआ और पाप के घड़े भरता हुआ । तलवार की नोक पर हिन्दुओं को मुसलमान बना रहा है । वह हमारे देश तथा

घराने का बैरी है—जन्म-जन्म का बैरी। हर प्रकार से उसे मारना धर्म है, धर्म। ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता। देखो बेटे, अफजल खां को जीवित वापस नहीं जाना चाहिए...." मेरी पत्नी, सईबाई कितनी खुश थी कि उसके भाई बजाजी को मुक्त कर दिया था, अफजल खां ने—जैसे वह अपनी बीमारी भूल गई थी। वह वीरकन्या, वीरपत्नी तथा वीरमाता सब कुछ हंसते-हंसते सहन किया उसने!

उधर अफजल खां की सेना वाई में, बरसात में बढ़ी हुई नदी के समान हो गई थी। बीजापुर के अनेक छोटे-बड़े सामंत उसके साथ हो लिए थे। अफजल खां का परिपत्र सब देशमुखों के नाम भेजा गया। कमजोर झुक गये। विरोधी मन ही मन कुढ़ने लगे। तटस्थ सोच में डूब गये। परिपत्र कान्होजी जोधे को मिला था—"अविचार और अज्ञानवश होकर शिवाजी ने निजाम शाही कोकन प्रदेश के मुसलमानों को तकलीफ पहुंचाई है, उन्हें लूटा है और बादशाही मुल्क से कितने ही किले हड़प लिए हैं। इसलिए उसके दमनार्थ अफजल खां महमदशाही को, उस प्रदेश के सूबेदार के रूप में नियुक्त कर भेजा जा रहा है। अतः आपको चाहिए कि आप खां साहब को प्रसन्न कर वे जैसे फरमायें, वैसा करें। और शिवाजी का पराभव कर उसे जड़ से उखाड़ डालें और इस आदिलशाही रियासत के हित की चिंता करें। अफजल खां आपकी प्रशंसा करेंगे, तभी आपकी बढ़ती दी जाएगी तथा आपका यथोचित सम्मान किया जाएगा। यह समझकर इस शासकीय आदेश का शीघ्र पालन करो। तारीख हिजरी 1069 सवाल 5 हजारी की परवानगी प्राप्त हुई है।"

कान्होजी मेरे पास आये थे। मैंने तो पहले ही बिल्वपत्र उठाकर शपथ ली थी कि अफजल खां के सामने नहीं झुकूंगा। कान्होजी ने अपनी देशमुखी के छिन जाने की चिंता न करते हुए, मेरा साथ दिया। और, अब सईबाई भी स्वर्गवास हो गई।

शिवाजी दुःख का कड़वा घूंट पी कर रह गये। कर्तव्योन्मुख बने रहे। दशहरा आया। शस्त्रों की पूजा हुई। शस्त्र कह रहे थे, "क्यों कितनी देर है, हमें बड़ी भूख लगी है।"

सैनिकों ने कहा—"जरा ठहर जाओ।"

दक्षिण में चारों तरफ अफजल खां के आक्रमण की चर्चा हो रही थी। दिल्ली तक सूचना पहुंच गई थी कि शिवाजी अब कुचल दिया जाने वाला है। औरंगजेब, कुतुबशाह, अंग्रेज, फ्रेंच, पुर्तगाली, डच, सिद्दी सब मन ही मन में यही चाहते थे।

वाई अफजल खां की जागीर का स्थान था। भरी बरसात में खूब मौज-मस्ती रही। इस बहाने सेना को भी आराम मिल गया। दशहरे के उपरांत अफजल खां ने कृष्णाजी भास्कर कुलकर्णी को विस्तृत पत्र और मौखिक आदेश देकर प्रतापगढ़ भेजा। कुलकर्णी का शिवाजी के दरबार में स्वागत हुआ। औपचारिक बातचीत के बाद, कुलकर्णी ने निवेदन किया—"राजन्,—खाने आजम अफजल खां महमदशाही बीजापुर

से वाई तशरीफ फरमाये हैं । उनका संदेश लेकर मैं आपके पास पहुंचा हूं । खां साहब आपके पिताजी के बड़े मित्र हैं और आपके परिवार से उनका आत्मीय सम्बंध है । उनकी इच्छा है कि आप उनसे मिलने वाई पहुंचें । आपके लिए उन्होंने यह पत्र दिया है ।"

वह पत्र इस प्रकार था—"तुम्हारी उद्दंडता शहन्शाह अली आदिलशाह को अब असहनीय हो गई है, उनके हृदय में कांटे के समान चुभ रही है। आदिलशाह ने संधि द्वारा मुगलों को दिया हुआ निजामशाह का सब दुर्गमय प्रदेश तुम्हारे ही अधीन कर दिया है । दण्डराजपुरी के सिद्दी भी तुमसे नाराज हैं। चन्द्रराव मोरे का तुमने सर्वस्व हरण कर लिया है । कल्याण भिवण्डी में तो तुमने मस्जिदों को तोड़ा है तथा काजी-मुल्लाओं को बंदीवास में डाला है । तुम स्वयं राजचिन्ह धारण करते हो, न्याय देते हो तथा स्वर्ण के सिंहासन पर बैठते हो और वंदनीय बादशाहों के सम्मुख भी झुकते नहीं हो। यह सब उद्दंडता अब सहन नहीं की जा सकती। आज तक तुम्हारे खिलाफ योग्य उपाय करने के लिए अनेकों को भेजा गया था परन्तु तुमने किसी को माना नहीं—इसीलिए परम प्रतापशाली आदिलशाह ने तुम्हें रास्ते पर लाने के लिए मेरी योजना की है। मेरे बादशाह ने छः प्रकार की सेना दी है; वे सब युद्ध के लिए उत्सुक हो गई हैं । मुसेखान, प्रतापराव मोरे आदि कई बार मुझे युद्ध के लिए उकसा चुके हैं, परन्तु....सिंहगढ़, लोहगढ़ आदि प्रबल दुर्ग तथा नीरा और भीमा नदियों के बीच का प्रदेश महाबलवान दिल्ली पति के सुपुर्द कर दो और चन्द्रराव मोरे से जबरदस्ती से छीनी हुई जावली भी आदिलशाह तुमसे वापस मांग रहा है। यह सब मान जाने में ही तुम्हारा हित है। मुझ पर विश्वास रखना, मैं कभी तुम्हारा नुकसान नहीं होने दूंगा। अतः मुझसे मिलने के लिए शीघ्र वाई चले आना ।"

मध्यरात्रि में शिवाजी की कुलकर्णी से खुलकर बात हुई, अंततः शिवाजी ने उसे मना लिया कि वह अफजल खां को प्रतापगढ़ के निकट मिलवाने के लिए मनवा लेगा । कुलकर्णी को मूल्यवान वस्त्र तथा गहने भेंट किये गये तथा अफजल खां के लिए भी मूल्यवान वस्त्र-गहने भेजे गये । शिवाजी का पत्र अफजल खां के नाम इस प्रकार था—"कर्नाटक के अनेक राजाओं को जिसने सहज रूप में नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया, उसका पराक्रम साक्षात अग्नि देवता के समान है।जिन्होंने पृथ्वी की शोभा द्विगणित की है और जो स्वभाव के सरल हैं, यह मेरे लिए अत्यंत आनंद की बात है, परन्तु मैं ऐसी प्रार्थना करना चाहता हूं कि आप इस निसर्ग रमणीय जावली आयें तो उचित होगा । मैं निर्भय होकर आप से मिल सकूंगा। सम्पूर्ण आदिलशाही सेना में या मुगलों की सेना में आपके समान सामर्थ्यवान पुरुष दूसरा कौन है ? आपकी ओर नजर उठाकर झांकने तक की बड़ों-बड़ों को हिम्मत नहीं पड़ती। मैं

तो स्वयं को आपके सामने किसी योग्य नहीं समझता। यहां आकर आप मुझे कृतार्थ करें तो आप जो भी किले और प्रदेश मांग रहे हैं, वह देकर अपनी तलवार भी मैं आपके सम्मुख रख दूंगा। आप यहां आइये, देखिये यहां के अरण्यों में विचरते हुए आपको तथा आपकी सेना को पाताल लोक का आनन्द प्राप्त होगा।"

पत्र पढ़ कर अफजल खां मारे खुशी के उछल पड़ा। उसने शिवाजी की बात मान ली, जबकि उसके सेनापति मन ही मन डर रहे थे कि शायद इसमें कोई चाल है। प्रताप मोरे आदि सरदारों ने कहा--"शिवाजी में अद्‌भुत सामर्थ्य है, वह किले के तट पर छलांग मारकर चढ़ जाता है, गरूड़ के समान शत्रु पर झपट्टा मारता है और एकाएक गायब हो जाता है....तुलजा देवी उस पर विशेषरूप से प्रसन्न है और वह स्वयं उसे मदद देती है...." यह सुनकर अफजल खां की आंखों से मानो अग्निवर्षा होने लगी। उसने कहा, "मेरा पराक्रम तुम लोग अभी जानते नहीं हो, इसलिए तुम शिवा की इतनी प्रशंसा करते हो। दूसरी बात, शायद तुम डरपोक, हो...."

अफजल खां की ओर से संकेत पाकर शिवाजी उससे मिलने की तैयारी में जुट गये।

उधर अफजल खां ने थोड़ी-सी सेना, खजाना और परिवार के लोगों को वाई में छोड़कर अपनी प्रचंड सेना के साथ जावली के लिए प्रस्थान किया। तीन मील तक कठिन चढ़ाई, फिर दस मील तक गहन अरण्य और फिर तीन मील तक सर्पाकृति घाटियों में से नीचे उतरना, इस प्रकार का रास्ता था। हाथी, घोड़े, ऊंट, तोपें, बैलगाड़ियों पर लदा हुआ सामान, वे सब उस रास्ते से आगे बढ़ने लगे। चढ़ते-चढ़ते कितने ही हाथियों के घुटने फूट गए, अपनी सूडों से वृक्षों का सहारा लेकर जैसे तैसे हाथी आगे चढ़ पाते थे। घोड़े तथा ऊंटों का बड़ा ही बहुत कठिन हो रहा था, कितने ही गहन गढ़ों में गिर कर चूर-चूर हो गये। कितने ही कटीली झाड़ियों में फंसकर लहूलुहान हो गये और कितने ही सर्प, बिच्छू तथा जहरीले प्राणियों के काट खाने से मर गये। सिपाहियों की भी यही हालत हुई। जावली पहुंचने तक सेना की जो दुर्गति हुई, उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

अफजल खां की सेना ने जावली में कुमुदवती नदी के तट पर छावनी लगा दी। शिवाजी ने अफजल खां को संदेश भिजवाया कि हीरे बेचने वाले सौदागर को भिजवा दें ताकि उससे हीरे-मोती खरीद कर उन्हें भेंट कर सके।

अफजल खां एक विशालकाय पुरुष था। छ: फुट ऊंचा और खूब मोटा था। कहते हैं कोई भी घोड़ा उसका वजन सहन नहीं कर सकता था और वह जल्दी ही मर जाता था, इसलिए अधिकतर वह हाथी पर बैठता था। दस आदमियों के बराबर भोजन वह अकेला खाता था। स्वभाव का क्रूर तथा कपटी था। वह कट्टर

मुसलमान तथा खुद को बुतशिकन कहलाने में गौरव महसूस करता था। शाहजी से वह बहुत द्वेष करता था। शायद इसीलिए मुस्तफाखान और बाजी घोरपड़े से उसकी घनिष्ठता थी। वह शाहजी को कैद करवा कर अपमानित ढंग से बीजापुर में लाया था। कनकगिरी के युद्ध में उसी ने शाहजी के बड़े बेटे सम्भाजी को धोखा देकर मरवाया था। कर्नाटक में उसने बहुत अधिक क्रूरता दिखाई थी।

अफजल खां मन ही मन खुश था कि शिवाजी हर प्रकार से उसके पंजे में आ चुका है, अब वह कहीं नहीं जा सकता। भेंट के समय गुप्त कटारी का उपयोग करते हुए वह शिवाजी के प्राण हरण करना चाहता था। बाद में उसकी प्रतापगढ़ पर स्थापित की हुई भवानी देवी की मूर्ति का भी नाश करना चाहता था।

अफजल खां अपने खेमे से चला तो उसके साथ बारह सौ सैनिक थे....। जब शिवाजी को यह सूचना मिली तो कुलकर्णी के माध्यम से मात्र अफजल खां के अंगरक्षकों में से किसी को आगे नहीं जाने दिया। सजे-धजे तम्बू में केवल शिवाजी तथा अफजल खां को मुलाकात के लिए जाना था....।

शिवाजी ने शामियाने में प्रवेश किया। खां आगे बढ़ा। उसने अपनी तलवार कृष्णाजी भास्कर को दे दी और लंबे डग भरते हुए वह आगे लपका। उसने कहा—"आओ शिवाजी राजे, तुम बहुत गलत रास्ते पर भटक रहे हो, मैं अब तुम्हें सही रास्ते पर ले आऊंगा, तुम्हें वजीरपुर चलना होगा। बादशाह से मैं तुम्हें बहुत बड़ी जागीर और इनाम दिलाऊंगा। आओ, घबराओ नहीं।"

गले मिलने के लिए खां आगे बढ़ा। शिवाजी भी आगे बढ़े। खां बहुत लंबा था। शिवाजी का कद छोटा था। गले मिलते समय शिवाजी की गर्दन उसने बायीं बगल में दबा ली, दूसरे हाथ से उसने कटारी निकाली और शिवाजी के पेट पर चलाई। परन्तु शिवाजी अंदर से लोहे का कवच पहने हुए थे। उस पर वह खर-खराई। शिवाजी मल्लविद्या में प्रवीण थे। उन्होंने तुरन्त अपनी गर्दन छुड़ा ली और सिंह के समान गर्जना करते हुए अपनी कटारी और बघनखा खां के पेट में घोंपकर अंतड़ियां बाहर खींच लीं। खां का पेट फट गया, आंतें बाहर निकल आयीं। उन्हें एक हाथ से संभालते हुए खां भागने का प्रयत्न करने लगा—'दगा, दगा! गनीम को मारो' कहकर चिल्लाने लगा। तब तक शिवाजी ने सर्र से तलवार निकाली और खां की गर्दन उतार दी।

दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। अंत में शिवाजी की जीत हुई।

सच्चा साथी

उस दिन बालकरन की नींद बहुत जल्दी खुल गई। वह खुश था। पास सोई माताजी से बोला, "माताजी, उठो ना। भूल गई, आज मेरा जन्मदिन है।" मुस्कराते हुए उसकी माताजी उठ बैठी, बालकरन का माथा चूमते हुए बोली–"जुग-जुग जियो, मेरे लाल।" बालकरन ने बिस्तर छोड़ा। जल्दी-जल्दी नहा धोकर नये कपड़े पहने। यह बालकरन का बारहवां जन्मदिन था। वह झूमते हुए बोला, "मां, मैं कितना बड़ा हो गया हूं---बारह साल का ना!" "बारह साल का बहादुर!" उसकी मां प्यार से बोली।

बालकरन हृष्ट-पुष्ट था, शरारती था, चालाक भी। झट से अपना बड़ा चाकू उठाया और लगा पत्थर पर घिसकर तेज करने।

"बाल. कर से कम आज तो इसे छोड़ो। आज तुम्हारा जन्मदिन है---तुम इसे हर रोज ही तेज करते हो।" उसकी मां ने प्यार से कहा।

"मा तुम तो जानती हो कि मुझे चाकू से कितना प्यार है। यही तो मेरा सच्चा साथी है। इसी के बल पर तुम्हारी रक्षा करता हूं---मेरी अच्छी मां।"

उसकी मां को हंसी आ गई। वह बोली। "अच्छा ठीक है। तुम्हारे जन्मदिन पर खीर.....।"

खीर का नाम सुनते ही बालकरन के मुंह में पानी भर आया। पलक झपकते ही उसने दूध का बर्तन उठाया और ग्वाले के घर की ओर चल दिया।

शोर, भाग-दौड़। कोई चिल्ला रहा था---"भागो भागो, गांव में तुर्क घुस आये हैं---भागो......." सचमुच गाजी तैमूर अपनी फौज के साथ गांव में घुस आया था—सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। लोगों को जो अपनी मूल्यवान वस्तु हाथ लगी उठाकर पास के जंगल की ओर भाग खड़े हुए। चारों तरफ से रोने-चिल्लाने की आवाजें आ रही थीं। सब जानते थे कि तैमूर कितना भयानक तथा निर्दयी है। उसकी राह में आता, उसे मौत के घाट उतार देता था अन्यायी तैमूर। उसके सिपाही किसी की परवाह नहीं करते थे। वे मर्द, औरतों तथा बच्चों को मार कर के ही दम लेते थे। घर उजाड़ देते थे। झोंपड़ियों को आग लगा देते थे–कितने गांव जला चुके थे---तैमूर के सिपाही।

बालकरन की मां ने सोचा कि वह भी अन्य बालकों के साथ जंगल की ओर भाग गया होगा। इसलिए उसने बालकरन की प्रतीक्षा नहीं की। वह भी पड़ोसिनों के साथ झटपट जंगल की ओर भाग गई।

बालकरन अपने जन्मदिन की खुशी में मस्त था । उसने ग्वाले को भागते जरूर देखा। वह उसकी झोंपड़ी की ओर गया । बर्तन में दूध पड़ा था । उसने अपने बर्तन में दूध ऊंडेला और अपनी झोंपड़ी की ओर लौटने लगा। वह कोई गीत गुनगुना रहा था । यह क्या ? जैसे ही वह अपनी झोंपड़ी के सामने पहुंचा तो उसे अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ । उसका घर गांव के किनारे पर था । वहां बहुत से सिपाही घुस आये थे । एक लम्बा-चौड़ा तगड़ा आदमी चारपाई पर बैठा ठठाकर हंस रहा था। उसके चारों ओर सिपाही खड़े थे। बिना रोक-टोक बालकरन के पांव घर के अन्दर पहुंचे..सामने लम्बा चौड़ा आदमी था । उसके सिर पर ताज था । यही तैमूर है ?

बालकरन अभी सोच ही रहा था कि तैमूर की आवाज गरजी, "कौन है यह बदतमीज छोकरा—···· ?"

बालकरन घबरा सा गया। साहस बटोरकर बोला, "तुम कौन हो? मेरी मां—मां कहां है ?" तैमूर जो सिपाहियों से घिरा था, उसकी निर्भीकता से बहुत प्रभावित हुआ..कितना बहादुर लड़का है, उसने मन ही मन में सोचा। उसे हथियारों से लैस सिपाहियों को देखकर जरा भी डर नहीं लगता। सीधा कमरे में घुसा आ रहा है। कितना निर्भीक....वह सोच ही रहा था कि बालकरन ने फिर पूछा, "कहा है मेरी मां····" तैमूर ने उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। वह चारपाई से उठा और बोला, "तुम्हारे हाथ में क्या है। क्या है ?"

"दूध" बालकरन ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"लाओ—इधर लाओ।"

"नहीं। मैं दूध नहीं दे सकता। आज मेरा जन्मदिन है। हम खीर····यह दूध केवल अपनी मां को दूंगा।"

बालकरन की निडरता से तैमूर आश्चर्यचकित रह गया। मगर पलक झपकते ही बालकरन से उसने दूध का बर्तन छीन लिया—"मैं हर चीज ताकत से छीन सकता हूं ····"उसने भद्दी आवाज में कहा, "और अपनी तलवार से तुम्हारे दो टुकड़े कर दूंगा····"

"इतनी बड़ी तलवार के मालिक होकर आप ऐसी बात कर सकते हैं" बालकरन क्रोध में चिल्लाया, "मेरे पास यह छोटा सा चाकू है, मुझे भी तलवार दो। मैं तुम से लड़ाई करूंगा।"

तैमूर खिलखिलाकर हंस पड़ा। फिर बोला, "तुम निरे बुद्धू हो मगर हो हिम्मत वाले।" जैसे ही तैमूर दूध पीने के लिये नीचे झुका, बालकरन ने लपक कर तलवार उठा ली। फिर वह जोश में बोला, "हिम्मत है तो आओ। अब हो जायें दो—दो हाथ···· तैमूर मुस्कराया—"शाबाश! बेटे जरा संभल कर—तलवार तो तुम्हारे से भी बड़ी है। बेहतर है तुम तलवार मुझे लौटा दो···।" बिजली की सी तेजी से तैमूर ने झपट कर तलवार छीन ली। निडर बालकरन चुप न रह सका। बोला, "मैं अपने चाकू से ही तुम्हारे साथ लड़ाई करूंगा।" ताली बजाते हुए तैमूर ने कहा, "शाबाश! तुम हो शेर, शेर के बच्चे। सही है कि मैं निर्दयता के लिए बदनाम हूं लेकिन मैं तुम्हारी जान नहीं ले सकता। तुम्हारी निर्भीकता ने हमारा दिल जीत लिया है। बोलो क्या चाहिये तुम्हें ?"

बालकरन ने पूछा, "अच्छा बताओ, मेरी मां कहां है ?"

तैमूर लजाते हुए बोला, "माफ करो बेटे, हमें मालूम नहीं है कि तुम्हारी

वालिदा कहां है, लेकिन इतना यकीन दिलाता हूं कि मेरे सिपाहियों ने गांव में किसी का कत्ल नहीं किया।" बालकरन ने 'हां' में सिर हिलाया क्योंकि उसे मालूम था कि तुर्क सच बोल रहा था। फिर बालकरन ने तनकर कहा, "ठीक है। मैं चाहता हूं कि तुम अपने सिपाहियों सहित, हमारे गांव से चले जाओ, अभी····।"

तैमूर ने स्वीकृति में सिर झुका दिया और अपने सिपाहियों को फौरन कूच का हुक्म दिया। तैमूर फुर्ती से घोड़े पर बैठ गया। अपनी तलवार और सिर झुकाकर बालकरन को अलविदा कहते हुए बोला, "सचमुच तुम बहादुर हो।" और उसका घोड़ा हवा से बातें करने लगा····।

देखते-देखते गांव के सारे लोगों ने बालकरन को घेर लिया।

"अरे बाल! तुमने कैसे किया यह करिश्मा?" बालकरन ने खुश होकर सारी कहानी सुना दी।

गांव वाले दांतों तले उंगली दबाकर रह गये-"बित्ता-भर का छोकरा और गाजी तैमूर।" बालकरन झूमते हुए बोला, "कितना बढ़िया रहा मेरा जन्मदिन। भगवान करे मेरा हर जन्मदिन इतना ही सुन्दर हो।"

आजादी की किरणें

बात सम्राट अकबर के समय की है। राजस्थान के बहुत से राजपूत राजाओं ने सम्राट अकबर के सामने हथियार डाल दिये थे, लेकिन एक वीर राजपूत शासक ने उनके सामने अपना सिर नहीं झुकाया था। उनका नाम था महाराणा प्रताप सिंह। महाराणा प्रताप की सेना के एक दल का सरदार था रघुपतसिंह।

अकबर के फौजी दस्तों ने कई बार रघुपतसिंह को गिरफ्तार करने की कोशिश की, लेकिन वह हर बार चकमा देकर निकल जाता था।

मुगल फौज का सेनापति रघुपतसिंह को हर कीमत पर बंदी बनाना चाहता था। एक दिन मुगलिया सल्तनत के सेनापति को खबर मिली कि रघुपतसिंह का बेटा बहुत बीमार है और वह स्वयं कहीं जंगल में छिपा है।

सेनापति ने यह खबर सम्राट अकबर तक पहुंचाई और अर्ज किया, "जहांपनाह! रघुपतसिंह का बच्चा बहुत बीमार है, उसे वह देखने अवश्य जाएगा। हमारे लिए यह सुनहरा मौका है कि उसे गिरफ्तार कर लिया जाये। इजाजत हो तो जवानों का एक दस्ता लेकर यह काम पूरा करूं।"

सम्राट अकबर ने "हां" में सिर हिला दिया। रघुपतसिंह के घर के पास मुगल सेना का एक दस्ता तैनात कर दिया गया।

इस बीच रघुपतसिंह के बेटे की हालत और भी बिगड़ गई, उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं थी, शायद वह जीवन की अंतिम सांसें गिन रहा था, उदास,दुखी-परेशान मां ने रघुपतसिंह को संदेश भिजवाया कि बच्चे को देखना है तो····

दूर घनी पहाड़ियों में छिपे रघुपतसिंह को जब अपनी पत्नी का संदेश मिला तो वह तुरंत बोला, मुझे जरूर जाना चाहिए। मैं जा रहा हूं।"

"आपका जाना खतरे से खाली नहीं, सरदार! मुगल सेना के सिपाही आप को पलक झपकते ही बंदी बना लेंगे। कृपया मेरी विनती····" एक राजपूत सिपाही ने निवेदन किया।

लेकिन रघुपतसिंह अपने इरादे पर अटल था, बोला "मेरा बेटा जीवन की अंतिम घड़ियां गिन रहा है, मेरी पत्नी ने मुझे बुला भेजा है, मुझे जाना ही चाहिए।"

रघुपतसिंह ने अपना जरूरी सामान बांधा, घोड़े को तैयार किया। उसके साथियों ने उसे बार-बार समझाया, एतराज किया, मिन्नत की कि वह किसी तरह

रुक जाये, लेकिन राजपूत सरदार अपनी जिद पर अटल रहा। देखते-देखते उसने घोड़े पर अपना सामान बांधा, छलांग लगाकर घोड़े पर सवार हुआ और चला गया। रघुपतसिंह दोपहर के वक्त अपने गांव पहुंचा। अब उसका घर सामने था। बड़ी निर्भीकता से वह अपने घर तक पहुंचा। सामने मुगल सिपाहियों का दस्ता उसकी प्रतीक्षा में था। आगे बढ़ते देखकर, सिपाहियों के सरदार ने उसे ललकारा, "कौन हो तुम ? यहां किस लिए आये हो ?" उस सरदार का नाम आकाश था।

रघुपतसिंह की आंखों में चमक आ गई और जवाब दिया, मेरा नाम रघुपतसिंह है।' मुगल सरदार, आकाश, उसकी ओर देखता रह गया। रघुपतसिंह बोला, "मैं अपने बीमार बेटे को देखने आया हूं। मैं उसे जरूर देखूंगा, अगर आप इजाजत दें।

लगे । सर हेनरी लारेन्स अवध राज्य का चीफ कमिश्नर था । उसने आने वाले खतरे का अनुमान लगा लिया था । इसलिए उसने अपने सारे सिपाहियों तथा अफसरों के परिवारों को 'मच्छी महल' में इकट्ठा कर दिया । 'मच्छी महल' गोमती नदी के किनारे पर स्थित था । इसे आसफुद्दौला ने जान-बूझ कर ऊंचे स्थान पर बनवाया था ।

अंग्रेज स्त्रियों तथा बच्चों के प्राण बचाने का इसके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं था । शत्रु की फौजें लखनऊ की ओर बढ़ती गईं । शीघ्र तथा स्थिर आक्रमण की आवश्यकता थी । कमिश्नर निर्णय नहीं ले पाया कि क्या करे । अन्ततः उसने शत्रु से टक्कर लेने की ठान ली । लखनऊ से छः मील दूर चिन्हट गांव में अंग्रेज फौज जमा हो गई । 30 जून, 1857 को जमकर लड़ाई हुई । भारतीय सेना अंग्रेज सेना से कहीं बढ़कर थी । इसलिए अंग्रेज सेना को मुंह की खानी पड़ी । सर हेनरी ने अंग्रेज सेना को पीछे हटने का आदेश दिया । लखनऊ भारतीय सेना के अधीन हो गया । इस प्रकार अवध का राज अंग्रेजों के हाथ से निकल गया ।

भारतीय सेना ने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया था । परन्तु बिना नेता के भारतीय सेना के सिपाही असन्तुष्ट थे । उन्हे नेता चाहिए था । नवाब वाजिद अली-शाह को देशनिकाला देकर कलकत्ता भेज दिया गया था । अब नवाब साहब का स्थान कौन ले ? सेना के सिपाहियों ने एक-एक करके नवाब साहब की सारी बेगमों से अनुरोध किया कि वे राज्य की बागडोर सभालें । परन्तु किसी ने 'हां' न की । जब बेगम हजरत महल से पूछा गया तो वह मान गई । इस प्रकार दस साला बिर्जिस कादर को नवाब घोषित किया गया और बेगम हजरत महल उसकी सरपरस्त बन गई ।

कहां नवाब वाजिद अलीशाह के हरम का सुख, कहां राज्य का प्रबन्ध । इसके अतिरिक्त हजरत महल का लालन-पालन लाड़-प्यार में हुआ था । राज्य-प्रबन्ध उसके बस की बात नहीं थी । फिर भी बेगम हजरत महल ने जिस निपुणता का परिचय दिया, उसे भारतीय इतिहास भुला नहीं सकता । एक अंग्रेज पत्रकार ने लिखा है---- "यह बेगम बड़ी योग्य, चुस्त तथा चालाक है । उसने सारे अवध को झकझोर कर जगाया और अपने बेटे को नवाब मानने का अनुरोध किया । सारे अमीरों ने उसकी बात को स्वीकारा । अवध-निवासियों ने अंग्रेजों से टक्कर लेने की शपथ ली । बेगम ने अंग्रेजों के विरुद्ध अन्ततः युद्ध लड़ने की घोषणा की । इससे पता चलता है कि भारतीय बेगमें तथा रानियां केवल महलों में रहने योग्य ही नही वे कुशल शासक भी हो सकती हैं ।"

एक अंग्रेज इतिहासकार, रसेल ने बेगम के बारे में लिखा है—"बेगम ने अवध राज्य बड़ी कुशलता से चलाया। बड़े-बड़े क्रान्तिकारी ऊंची पदवियों पर थे। इस क्रान्तिकारी सरकार का राज लगभग दस महीने रहा। इसकी नेता थी बेगम। सारा लखनऊ शहर उनके अधीन था। नवाब बिर्जिस कादर के फरमान के अधीन सारा राज-काज चलता था। बेगम ने सारे अवध राज्य में दौरा किया। छोटे-बड़े सबको अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा दी। अवध के सभी ताल्लुकदार तथा जमींदारों ने उनके आदेश का पालन किया और अंग्रेजों के विरुद्ध जमकर लड़ाई की।"

बेगम ने लखनऊ शहर की रक्षा के लिए एक दीवार बनवाई। उस पर पांच लाख रुपया खर्च किया गया। जब बेगम को पता चला कि अंग्रेजों ने नेपाल के राजा राणा जंगबहादुर को अपने साथ मिला लिया, उनके साथ देने पर गोरखपुर जिला उसे देने का वचन दिया गया था। यह जानकर वह बहुत तिलमिलाई। बेगम ने राणा साहब को तुरन्त पेशकश की कि उसे भारतीयों का साथ देना चाहिए। उसे आश्वासन दिलाया कि अंग्रेजों के असफल होने पर राणा साहब को गोरखपुर, आजमगढ़, आरा, छपरा तथा बनारस के जिले दिये जायेंगे।

बेगम ने अंग्रेजी सेना में भारतीय अफसरों से निवेदन किया कि वे खाली बन्दूकें-तोपें चलायें। गोला-बारूद से अपने शत्रु अंग्रेजों को निशाना बनायें।

बेगम ने स्वयं 25 फरवरी, 1858 को हाथी पर बैठकर लड़ाई का कुशल संचालन किया। इस बार अंग्रेज पूरी तैयारी के साथ आये थे। घमासान युद्ध हुआ। अन्त में जीत अंग्रेजों की हुई। बेगम लड़ाई के मैदान से अपने कुछ साथियों के साथ भाग निकली। उसने घाघरा नदी पार करके बूंदी (जिला बेहराइच) के दुर्ग में शरण ली। बेगम ने अपनी हिम्मत तथा कोशिश से गोला-बारूद तथा शस्त्रों से अपनी स्थिति को बहुत सुदृढ़ बना लिया। कहते हैं कि बेगम के पास पन्द्रह-सोलह हजार बहादुर सैनिक इकट्ठे हो गये। उसमें अवध के ताल्लुकादार तथा जमींदार भी शामिल थे। कहा जाता है कि सन् 1858 में बेगम ने अंग्रेजों पर कई भारी आक्रमण किए। इस प्रकार बेगम ने इस स्वतन्त्रता युद्ध में अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया। इतनी भीषण लड़ाइयों की मिसाल स्वतन्त्रता-संग्राम में कम मिलती है।

महारानी विक्टोरिया के राज्याभिषेक के बाद अंग्रेजों ने बेगम को पेंशन तथा अन्य प्रलोभन देकर जीतना चाहा परन्तु इसके उत्तर में बेगम ने अपने बेटे नवाब बिर्जिस को राजगद्दी पर बिठा दिया। किसी कमजोर सेनापति ने कहा, "अंग्रेजों ने उनके सारे गुनाह माफ कर दिये हैं। अब वे उन पर आक्रमण नहीं करेंगे।" परन्तु यह अंग्रेजों की चाल थी।

लगातार लड़ाइयां लड़ते-लड़ते बेगम लगभग टूट चुकी थी । उसका अधिकांश गोला-बारूद तथा सैनिक समाप्त हो चुके थे। इस पर भी बहादुर बेगम ने हिम्मत न हारी । वास्तव में वह किसी भी मोल पर बूंदी का किला छोड़ना नहीं चाहती थी। अन्त में दिसम्बर 1858 को वह गिने-चुने वीर सैनिकों के साथ हिमालय की तराई की ओर चली गई । कहते हैं सन् 1859 के अन्त में बेगम अवध ने महाराजा नेपाल के यहां शरण ली । अंग्रेज चिल्लाते रहे कि महाराजा नेपाल उसे सहारा न दें । कहते हैं कि अन्त में बेगम का निधन काठमाण्डू (नेपाल) में ही हो गया । उस समय वह अपने बेटे के साथ आम आदमी की तरह जीवन के दिन काट रही थी ।

ऐसी वीर स्त्री को क्या इतिहास भुला सकता है ?

बेड़ियों में जकड़ा शेर

एक नहीं, आठ महीने तक मुगल सेना ने गुरदासपुर (पंजाब) के किले को घेर कर रखा । बंदा बहादुर ने यौगिक क्रियाओं से शत्रु को प्रभावित किया । पर आठ महीने तक एक स्थान पर घिरे रहने से उनकी रसद सामग्री समाप्त हो गई । कई दिनों तक वे घास, बैलों का कच्चा मांस और पेड़ों की छाल खाते रहे । अंत में शत्रु ने बंदा बहादुर तथा उसके सभी सैनिकों को बंदी बना लिया ।

गुरदासपुर के पतन के बाद सिखो तथा उनके नेता बंदा बहादुर सिंह का इतना अधिक भय था कि उसे लोहे की जंजीरों से जकड़कर पिंजरे में डाला गया । एक मुग़ल अफ़सर को खंजर देकर उसके साथ रखा गया और उसे कहा गया कि यदि बंदा भागने का प्रयत्न करे तो उसे खंजर घोंप दिया जाये ।

29 फरवरी, 1716 की रात को बंदा, उसका परिवार और सैकड़ों सिख राजधानी दिल्ली लाये गए। बंदा की पत्नी को जबरदस्ती शाही हरम में भेज दिया गया। बंदा के अतिरिक्त सभी सिख कैदियों के जनता के सामने सिर काट दिये गये।

8 जून, 1716 की रात! अगले दिन सुबह बंदा का वध करने का आदेश दिया जा चुका था। यह क्या? बंदा बड़े मजे से मीठी नींद सो रहा था। उसके चेहरे पर चिंता की रेखा तक न थी। सपने में उसके सामने दृश्य आने लगे—बहुत दिन पहले वह (लछमन देव) कितना बलवान था। बंदूक चलाने तथा शिकार खेलने से कहां फुर्सत मिलती थी। एक बार उसने हिरणी का शिकार किया। बेचारी गर्भवती हिरणी तड़प-तड़प कर उसकी आंखों के सामने मर गई। इस घटना का उसके दिल पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसकी जीवन-धारा ही बदल गई। प्रायश्चित की भावना इतनी प्रबल थी कि उसने वैराग्य ले लिया। पंद्रह वर्ष की आयु और वैराग्य। एक गुरु मिले—वह लछमन देव से माधो दास बन गया और पंचवटी के वनों में रहने लगा।

संयोग की बात थी कि दशम गुरु गोविन्द सिंह से भेंट हो गई। उनके साथ सम्राट बहादुरशाह भी थे। वे दोनों दक्षिण की ओर जा रहे थे। वह गुरुजी से इतना प्रभावित हुआ कि उनकी शरण में चला गया। सिख बना। नाम बदला। अब वह माधो दास से गुरुबख्श सिंह हो गया। परन्तु वह गुरु का बंदा, बंदा बहादुर सिंह कहलाया।

सिख धर्म के नियमों का पालन करके उसके जीवन की काया पलट हो गयी। उसका गुरुजी के साथ बहुत थोड़े समय सम्पर्क रहा, लगभग दो-ढाई महीने। इस बीच उसने देश की दुर्दशा को भली-भांति समझ लिया।

पंजाब में कई छोटी-छोटी विजयें प्राप्त करने के बाद, उसने सरहिन्द पर अधिकार कर लिया। गुरु गोविन्द सिंह को कष्ट देने वाले तथा उनके दो बच्चों को जीवित दीवार में चिनवा देने वाले हृदयहीन वजीर खां के शहर सरहिन्द को ऐसा तहस-नहस किया जिसकी मिसाल इतिहास में नहीं मिलती।

पंजाब में सिखों की विजयों का समाचार पाकर मुगल सम्राट बहादुरशाह विचलित हो उठा.... वह मराठों और राजपूतों के विरुद्ध चढ़ाई छोड़कर उत्तर की ओर चल पड़ा। सिखों से युद्ध जारी रहा.... बहादुरशाह के बाद 1713 में फरूखसीयर दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसके दो शक्तिशाली जनरल थे—अब्दुल-समद खां तथा जकरिया खां। वे क्रमशः लाहौर तथा जम्मू के गवर्नर नियुक्त हुए थे। दोनों ने मिलकर सिखों पर आक्रमण किया और अंत में गुरुदासपुर के किले को आठ महीने तक घेर कर उसे तथा उसके सैनिक साथियों को बंदी बना लिया।

'आत्मा अमर है।' शरीर को कैद करके शत्रु क्या कर लेंगे? बंदा बहादुर सिंह ने करवट बदली। वह फिर खिलखिला कर हंसा....पहरेदार मारे डर के थर-थर कांपने लगा—सुबह को मौत के घाट उतरने वाले के होंठों पर हंसी?

अगले दिन बंदा को वध के लिए पेश किया गया। उसने असीम निर्भयता का परिचय दिया—सब से पहले उसके नन्हे पुत्र को अपने हाथों अपनी गोद में मारने का आदेश दिया गया। किन्तु बंदा ने इन्कार कर दिया। क्षण भर में जल्लाद ने बच्चे के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बच्चे का कलेजा निकालकर बंदा के मुंह में ठूंस दिया! बंदा चुप रहा-वह तो लोहे की जंजीरों में जकड़ा था। वह अपनी विवशता पर अपने ही जोश में जल रहा था। उसके बाद उसके अंग काट दिए गये और जल्लादों ने गर्म सलाखों से उसका मांस नोचना आरम्भ किया तथा और भी कई असह्य अत्याचार किये गये, परन्तु बंदा ने उफ तक न की। उसके द्वारा क्षमा की भीख मांगने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता था। सचमुच ऐसी वीरता से कष्टों को सहन करने वाले व्यक्ति रोज पैदा नहीं होते—वह असाधारण मनुष्य था।

इतिहास गवाह है कि 1708 में गुरु गोविन्द सिंह के स्वर्ग सिधारने के बाद बंदा बहादुर सिंह ने पंजाब में सिखों का नैतिक नेतृत्व संभाला। अगले आठ वर्षों के लिए उसकी, पांच नदियों की भूमि पंजाब पर, एक शक्तिशाली सत्ता रही। एक धर्म रक्षक के रूप में उसने मुगल अत्याचारों के विरुद्ध सिखों को प्रेरित किया।

भारत के इतिहास में पहली बार बंदा बहादुर सिंह ने जमींदारी का उन्मूलन किया। इतिहासकार खफी खां के अनुसार—बंदा आत्मा की अमरता में विश्वास रखता था। कुछ सिख उसे अवतार मानते थे जिसने गुरु गोविन्द सिंह का स्थान लिया।

नलवा

वह बीमार था । गुजरांवाला (पाकिस्तान) में उसे पेशावर पर छठे आक्रमण की कोई सूचना नहीं थी । जाने क्यों वह चिंतित था । दुर्ग के रक्षक वीरता से लड़ रहे थे । उनके पास गोला-बारूद सीमित था । जमरूद का दुर्ग खैबर घाटी के ठीक मुंह पर था । यह दुर्ग काबुल के कालीनाग की नाक में कृष्ण की नकेल के समान था । महाराजा रणजीत सिंह ने सेनापति महासिंह की देख-रेख में बहुत-सी फौज भेजी थी । हरि सिंह नलवा के पेशावर में न होने से पठानों का साहस बढ़ गया था । वे बढ़-चढ़ कर आक्रमण कर रहे थे । दुर्ग के अंदर की तोपों ने पठानों को दुर्ग के निकट आने नहीं दिया ।

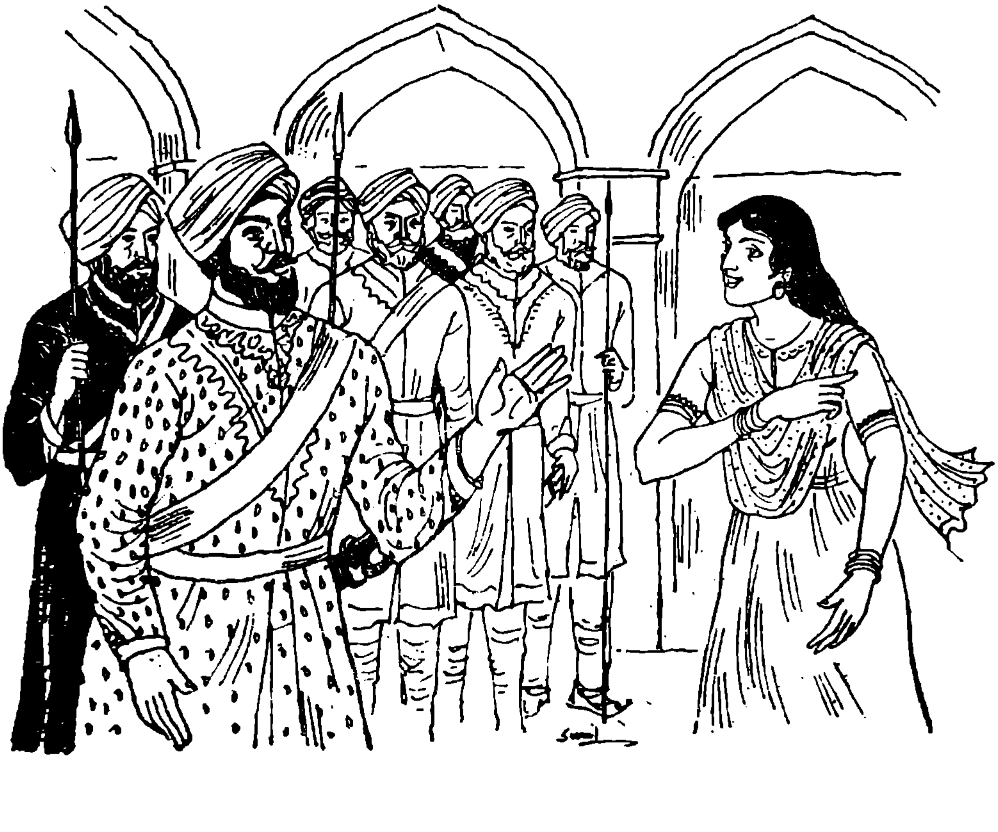

युद्ध के दूसरे दिन ही तोपें चलनी बंद हो गई । जब शत्रु की सेनाएं दुर्ग के निकट जातीं, तभी गोली चलती। इतना भीषण युद्ध हुआ कि शाम तक दुर्ग की एक दीवार बैठ गई । इसके बाद दोनों तरफ के सैनिक आराम करने लगे और लड़ाई अगले दिन पर जा पड़ी ।

सेनापति महासिंह के लिए आक्रमण को अधिक समय तक रोक पाना असम्भव प्रतीत हो रहा था । इसलिए उसने हर मोल पर उस आक्रमण और दुर्ग की स्थिति का समाचार भिजवाने का निर्णय लिया। लेकिन समाचार कौन, कैसे ले जाये ? चारों ओर पठानों का घेरा था । तभी शरण कौर नाम की एक वीर सिहनी ने अपने देश के सम्मान की रक्षा के लिए अपने आपको प्रस्तुत किया । अन्य सिखों के माथे मारे शर्म के झुक गये । किन्तु उन वीरों की अत्यंत आवश्यकता थी ताकि हर मोल पर दुर्ग की रक्षा की जा सके। दो दिन के युद्ध की थकान से चूर-चूर वीर सैनिक रात-भर काम में जुटे रहे । सवेरा होने तक दुर्ग की दीवार फिर से खड़ी कर दी गई ।

उधर महान शरण कौर मंजिलों पर मंजिलें तय करती हुई, पठानों के घेरे से बचती हुई, अपनी मंजिल तक पहुंच गई । जमरूद पर इस अप्रत्याशित आक्रमण की सूचना पाकर नलवा को चैन कहां ? वह अपनी बीमारी भूल गया । उसके दिमाग में एक तूफान उठा । उसके दिल में मानो आग की लपटें ठाठें मारने लगीं । उसके शरीर की नसों में सैंकड़ों सूरज कांपने लगे । वह हर मोल पर अपने देश की लाज बचाएगा । इस सौदे में उसे अपनी जान की बाजी लगा देना जरा भी महंगा नहीं लग रहा था । चाहे पठानों के पास काल की शक्ति भी होती तो भी वह जरूर जूझता । फिर पठान तो केवल मानव ही थे, वे पठान जिन्हें उसने अनेक बार खुले युद्धों में पछाड़ा था । नलवा ने रात को ही अपनी सेना को कूच का आदेश दिया। बीमारी की हालत में ही नलवा ने अपना गणवेश धारण किया । प्रातः काल नलवा जब जमरूद के निकट पहुंचा तो उसने अपने आपको अपार सेना से घिरे हुए पाया पठान सेना अभी युद्ध की तैयारी में व्यस्त थी । नलवा उन्हें एक क्षण की भी मोहलत देना नहीं चाहता था—'सत श्री अकाल' के नारों से वायुमण्डल गूंज उठा और सिख शेरों की भांति शत्रु पर टूट पड़े । ठीक उसी समय दुर्ग से गोला-बारूद की वर्षा होने लगी। आन की आन में पठानों की सेना की पंक्तियों में दरारें डाल दी गईं । वहां टिकना केवल मौत थी । पठान दुम दबाकर भाग खड़े हुए । नलवा उस समय उनका पीछा नहीं करना चाहता था । किंतु उसे सिख सरदारों पर पठानों का बार-बार धोखा देकर आक्रमण करने की प्रवृत्ति पर विशेष क्रोध था । वह उन्हें सदा के लिए पाठ पढ़ाना चाहता था । आगे-आगे पठान भाग रहे थे और पीछे

दूसरा सेनापति सरदार निधानसिंह अपने पांच सौ सिख वीरों के साथ बढ़े जा रहे थे। नलवा को भय था कि कहीं निधानसिंह के सैनिक शत्रु के घेरे में न आ जायें। इसलिए उसने अपनी सेनाओं को खैबर घाटी में छोड़ दिया, परन्तु शायद नलवा अपने जीवन का काम समाप्त कर चुका था या शायद सिख राज्य का इससे अधिक प्रकर्ष विधाता को स्वीकार नहीं था। उसने शेरदिल नलवा को शेरदिल महाराजा रणजीतसिंह से छीन लिया। सरदार नलवा की वीर गति की घटना जानकर कलेजा मुंह को आता है। घटना इस प्रकार है—पठान जानते थे कि नलवा को युद्ध में हराना उनके लिए असम्भव है। वे यह भी जानते थे कि यदि नलवा जीवित रहा तो खैबर पार करना उनके लिए असम्भव ही रहेगा। इसलिए उन्होंने अंतिम बार नलवा पर धोखे से वार किया। नलवा बढ़ा चला जा रहा था, अपनी सेनाओं के आगे आगे, तभी वह सुरकमुरक के स्थान पर पहुंचा कि घाटी में छिपे हुए दो पठानों ने उस पर गोलियां दागी। पहली गोली नलवा के अंगरक्षक को लगी। जैसे ही नलवा उसे देखने के लिए रुका, झुका तो दो गोलियां उसे लगीं—एक छाती में, दूसरी कमर में। अब नलवा के लिए खड़ा होना असम्भव था। उसके सुन्दर वीर शरीर से रक्त के फव्वारे छूट रहे थे किन्तु वह हिसाब चुकता करना नहीं भूला। वह तब तक वहीं रुका रहा जब तक गुफा से गोलियां आनी बंद नहीं हो गईं और वे पठान सिखों की गोलियों से छिद नहीं गये। ऐसी असह्य पीड़ा में नलवा ने अपार सहनशीलता और मौत से भी लड़ने की शक्ति का एक बार फिर परिचय दिया। वास्तव में उसे अपनी जान देने से पहले निधानसिंह की सेना की रक्षा करनी थी। इसलिए उसने तत्काल अपना तेज रफ्तार योद्धा निधानसिंह के पास भेजा और उसे वापिस आने का आदेश दिया। हरि सिंह नलवा गिर रहा था किन्तु वह घोड़े पर ही डटा रहा और सैनिक से सहारा लेकर वापिस जमरूद आया। वह इस प्रकार घायल होने और मरने का समाचार फैलने नहीं देना चाहता था। इसका भी उसने समुचित प्रबंध किया। अपनी मृत्यु की खबर केवल महाराजा रणजीत सिंह के पास भेजने की आज्ञा दी। उसे पता था कि यदि रणजीत सिंह के जमरूद आने से पहले उसकी मृत्यु का समाचार पठानों को मिल गया तो वे जमरूद की ईंट-से-ईंट बजा देंगे और हर कीमत पर पेशावर लेना चाहेंगे। कितना वीर था वह कि आखरी दम तक वह स्वयं ही हर विषय पर आदेश दे रहा था। किन्तु धीरे-धीरे चेतना मिट गई और नलवा, जिसके जीवन का प्रत्येक क्षण वीरता के इतिहास में मील के पत्थर के समान था....अपनी वीर गति को प्राप्त हुआ।

कहते हैं महाराजा रणजीत सिंह अपने सेनापति की मृत्यु का समाचार सुनकर पीड़ा से छटपटाने लगे। उन्हें लगा कि उसका दायां बाजू कट गया है। लाहौर

दरबार के सभी सामंतों के रहते हुए भी वह आज अपने आपको पूर्णरूपेण मित्रहीन, अकेला समझ रहे थे। रणजीत सिंह उस समय अपने जीवन के अंतिम चरण में प्रवेश कर रहे थे। वह शिथिल हो रहे थे किन्तु उन्होंने समाचार सुनते ही, अपना सैनिक वेष धारण किया और सेना सहित युद्ध भूमि की ओर तेजी से बढ़े....।

सरदार हरि सिंह नलवा सुन्दर था और वीर भी। लोग प्यार से उसे नलवा कहा करते थे विशेष रूप से महाराजा रणजीत सिंह। नल-दमयन्ती की प्रेम-कथा तो सभी भारतीयों ने सुन रखी होगी। दमयन्ती जैसी परम सुन्दरी नल पर मोहित हो गई थी। दमयन्ती को प्राप्त करने के इच्छुक देवताओं ने भी नल का रूप धारण किया था। नल वीर था तथा दानी भी अद्वितीय था। हरि सिंह को प्यार से नलवा या लघु महाराज नलवा कहना सार्थक लगता है। जब तक पंजाब को अपनी परम्पराओं पर गर्व रहेगा, सरदार हरि सिंह नलवा का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा।

अनमोल रत्न

एक दिन सम्राट अकबर घूमने निकले। उनके साथ फैजी तथा अंगरक्षक थे। किले के निकट ही उन्हें एक अजनबी मिला। बड़े अदब से झुक कर सलाम किया और बोला, "जहांपनाह। हुजूर का इकबाल बुलंद हो। इजाजत हो तो कुछ अर्ज करूं। बहुत दिनों से इन्तजार में था। इसी जगह खड़ा इन्तजार करके चला जाता था। आज कीमती मौका मिला है।"

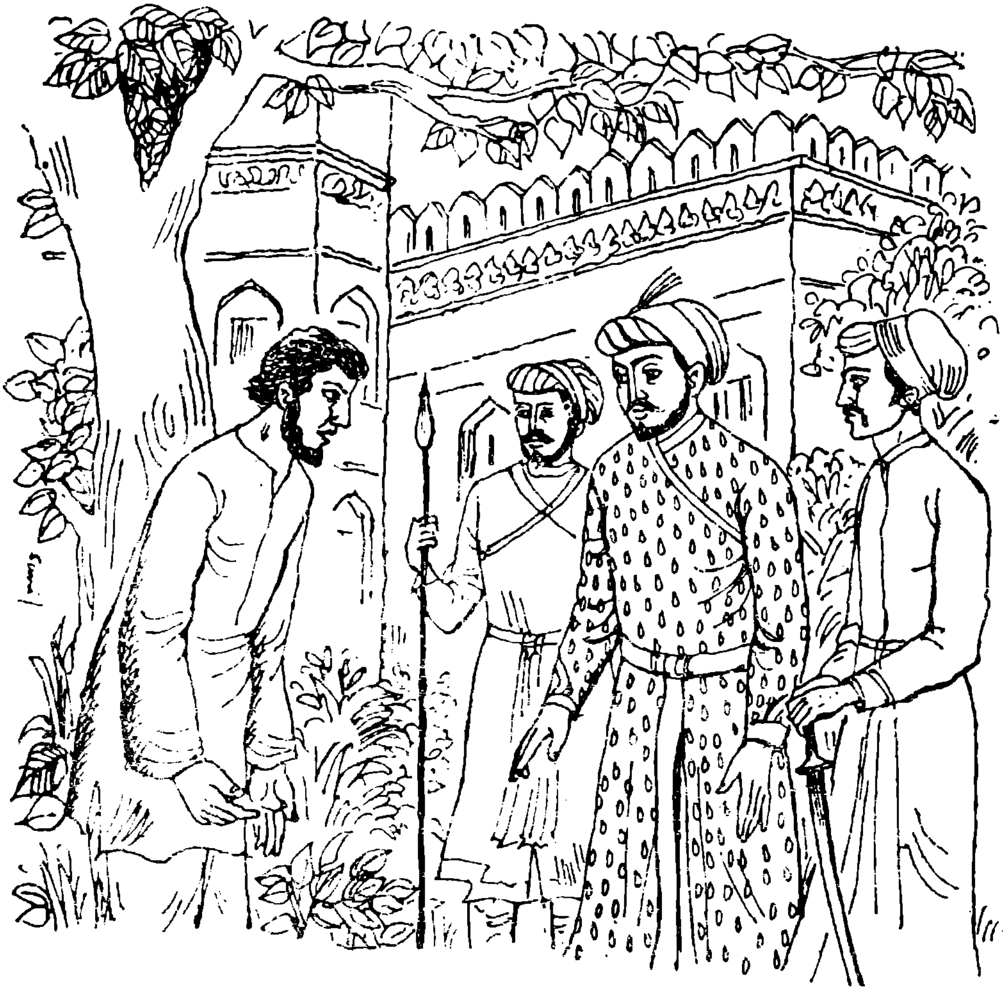

अजनबी की बात सुनकर सम्राट रुके । फैजी से बोले, "वह आदमी क्या चाहता है ?" अजनबी ने झुककर सलाम किया । कांपती आवाज में बोला, "बंदानवाज ! क्या अर्ज करूं । सात साल पहले की बात है । आपके दरबार के एक रत्न बीरबल ने मुझसे एक हजार अशर्फ़ियां उधार ली थीं । मैं ग़म खाता रहा, सोचता रहा कि बीरबल भला आदमी है । जब उसके पास पैसे होंगे, लौटा देगा, मगर आज तक उधार लौटाने की नौबत नहीं आई । एक बार हिम्मत बांधकर उनसे बात भी की । बहुत बुरी तरह से पेश आये । नाक-भौं सिकोड़ते रहे । यहां तक कि उधार लेने की बात से साफ इंकार कर दिया । बोले--झूठा इल्जाम लगाता है । मैंने कोई कर्ज-वर्ज नहीं लिया । जाओ, जिससे शिकायत करनी है, कर दो । मुझे अपनी शक्ल न दिखाना...."

यह सुनकर मैंने जवाब दिया, "मैं जहांपनाह की अदालत में जाऊंगा ।"

वह बिगड़ते हुए बोला, "जहांपनाह, जहांपनाह ! क्या कर लेंगे वे मेरा ? मकान कुड़क करा लेंगे, जिला वतन (शहर बदर) करा देंगे" !

फैजी जहांपनाह से बोले, "हुजूर सुन ली अपने चहेते रत्न की तारीफ । क़र्ज अदा नहीं करते । मांगने पर गाली-गलौज करते हैं । यहां तक कि हुजूर की इज्जत को भी परवाह नहीं करते । गरीबपरवर, बस यह देख लिया जाये कि दस्तावेज बीरबल के हाथ का लिखा है कि नहीं ।" अजनबी ने दस्तावेज आगे बढ़ाया । फैजी फौरन बोले, "दस्तावेज तो सही जान पड़ता है । दस्तखत तो बीरबल के ही हैं । मगर, मगर तुम्हारा क्या नाम है अजनबी ?" "खाकसार को रहमान खां कहते हैं । मैं आगरे का बाशिन्दा हूं । यहां रोजगार के सिलसिले में आता रहता हूं । जनाब, मैं बीरबल को एक जमाने से जानता हूं । सच तो यह है कि मैं ही उन्हें आगरे से दिल्ली लाया था । उन्होंने जहांपनाह के दरबार में इज्जत पाई मगर अब वह मुझे बिल्कुल भूल गया है । सरकार, दुनिया कितनी बेवफा है । कोई जमाना था जब बीरबल मेरे ग़रीबखाने पर हाजिर रहते थे और अब मेरी बात तक नहीं सुनते । उधार लौटाने की बात तो दूर रही । हुजूर, मेरा क़र्ज दिलवा दीजिये मय ब्याज के । अब तो क़र्ज दुगना हो चुका है । ब्याज नहीं तो मूल रक़म ही दिलवा दें ।"

"ठीक है, ठीक है" फैजी दस्तावेज लौटाते हुए बोला, "कल क़िले में हाजिर होना । जहांपनाह इन्साफ पसंद हैं । तेरी दरख्वास्त पर गौर फरमायेंगे । हां, यह दस्तावेज लाना मत भूलना ।"

'हजूर, मुझ जैसे ग़रीब को क़िले में कौन घुसने देगा ! अगर ऐसा ही होता तो नाचीज कभी का जहांपनाह से शिकायत कर चुका होता—यहां रास्ते की खाक क्यों छानता ।" अजनबी ने बड़े अदब से कहा ।

फैजी कुछ झुंझलाते हुए बोले, "ये लोग जो हमारे साथ हैं, इन्हीं में से किसी के साथ चले आना। इनमें से कोई तो साथ ले ही आयेगा।"

यह कह कर फैजी ने सम्राट अकबर की ओर देखा। सम्राट आगे बढ़े। मौका पाकर फैजी ने अर्ज किया, "जहांपनाह! गुस्ताखी मुआफ, बीरबल का रवैया काबिले एतराज है। अपने सामने किसी को खातिर में नहीं लाता। अजनबी की बात में वजन है।"

सम्राट अकबर स्वीकृति देते हुए बोले, "क्यों नहीं, उसके हाथ में दस्तावेज जो है! आखिर दस्तावेज जाली थोड़े ही होगा। बीरबल ऐसा गुल भी खिलाएगा, हमें उम्मीद न थी। हमारी बदनामी करता है। क़र्ज़ लिया था तो लौटाना भी उसका फर्ज था। हमारा नौकर कर्ज ले और न लौटाये? कितनी शर्म की बात है, हमारे लिये!"

दूसरे दिन ठीक वक्त पर दरबार लगा। दीवाने-आम में चहल-पहल शुरू हुई। अजनबी भी किसी तरह क़िले के अंदर पहुंच गया। वह दीवाने आम के सामने ही एक ओर खड़ा हो गया। फैजी की उस पर नजर पड़ी तो उन्होंने उसे बुलाया और अपना दस्तावेज पेश करने को कहा।

अजनबी ने दस्तावेज पेश किया। बीरबल दरबार में उपस्थित नहीं था। इसलिए दूसरे दरबारियों को उनके खिलाफ बात करने का अवसर मिल गया। सबने दस्तावेज देखा। सम्राट का एक अन्य रत्न अबुलफजल, उसे देखते ही बोला, "दस्तावेज जाली नहीं है। दस्तखत तो बीरबल के ही हैं। कितनी अजीब बात है कि बीरबल रहमान को फरेब (धोखा) देने की कैसे हिम्मत कर सकता है! बीरबल तो शहंशाह के लिए बवाले जान बनते जा रहे हैं। देखिये न, हजरत दरबार से गायब हैं। आज! शायद उन्हें इस शिकायत का पता चल गया होगा।"

सम्राट अकबर ने हुक्म दिया, "बीरबल को फौरन बुलवाया जाये ताकि इस दस्तावेज पर कुछ राय कायम की जा सके!"

हुक्म सुनते ही हरकारा बीरबल को बुलाने चला गया। अजनबी ने मौका पाकर बात बढ़ाई, "माई-बाप! बीरबल का तो कल से ही पता नहीं। शायद यह खबर मिलते ही कहीं फरार हो गया। बीरबल जहांपनाह का आदमी है। इसलिए आप ही मेरा कर्ज चुका दें। मैं इतनी अशर्फियां नहीं छोड़ सकता। मेरी इतनी हैसियत नहीं।"

अजनबी की बात सुनकर सम्राट अकबर नाखुश होकर बोले, "फैजी एक काम करो। इस अजनबी का कर्ज शाही खजाने से अदा करा दो, साथ ही एक फरमान निकाल दो कि बीरबल को बरखास्त किया जाता है। ऐसे शख्स को हम अपनी

खिदमत में कैसे रख सकते हैं।" आदेश पाते ही खज़ाने से एक हज़ार अशर्फियां आ गईं। वे अजनबी को दे दी गईं और उससे दस्तावेज़ ले लिया गया।

अशर्फियां पाते ही अजनबी मुस्करा उठा। वह झुककर सलाम करते हुए बोला, "ऐसा इन्साफ पसंद सम्राट न पैदा हुआ है, न होगा····" उसी समय हरकारा लौट आया। फर्शी सलाम करते हुए बोला, "हुजूर बीरबल तो यहीं हैं। वो यहीं आये हैं।"

यह सुनकर अजनबी बोला, "जहांपनाह! गुस्ताखी मुग्राफ। बीरबल यहीं था, यहीं है....."ऐसा कहते ही उसने अपना छद्म वेष उतार फेंका। सामने बीरबल खड़ा था। सब के ग्राश्चर्य का ठिकाना न रहा। सब हंसते-हंसते लोट-पोट हो गये।

नन्हा वीर

वह एक नन्हा वीर था। उसका नाम था—प्रतापसिंह बारहठ। उसके पिता का नाम केसरीसिंह था। प्रताप का बालपन कोटा (राजस्थान) में बीता। उसकी शिक्षा दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल, अजमेर में हुई। उसे डिप्लोमा या डिग्री की इच्छा नहीं थी। वह केवल विद्या अध्ययन के लिए स्कूल में दाखिल हुआ था। प्रताप के पिता का विचार था कि अंग्रेजों द्वारा चलाये गये विश्वविद्यालय गुलामों को पैदा करने वाले सांचे हैं, जहां भारत के युवकों को गुलामी में ही प्रसन्न रहने का पाठ पढ़ाया जाता है। उसी समय जाने-माने देशभक्त श्री अर्जुनलाल सेठी ने जैन वर्धमान विद्यालय की जयपुर में स्थापना की। अंधे को क्या चाहिये? दो आंखें! प्रताप उस विद्यालय में चला आया। सेठी जी अपने विद्यार्थियों को 'देश की आजादी' के लिए काम करने की प्रेरणा देते थे। वहां रहकर प्रताप की देश की आजादी के लिए काम करने की भावना और भी मजबूत हो गई।

जब सेठी जी का विद्यालय इन्दौर ले जाया गया तो प्रताप को उसके पिता ने प्रसिद्ध देशभक्त और क्रान्तिकारी श्री अमीरचन्द के पास दिल्ली भेज दिया। अमीरचन्द जी थे तो संस्कृत विद्यालय के प्राचार्य परन्तु वे रासबिहारी के दल के विश्वसनीय सदस्य थे। लुक-छिप कर देश की आजादी के लिए विद्रोह की तैयारी में भाग लेते थे। प्रतापसिंह अमीरचन्द जी की निगाहों में इतने चढ़ गए कि उसे रासबिहारी बोस के पास भेज दिया गया। कुछ ही दिन बाद प्रताप को 'विप्लव का संगठन' तथा राजपूतों में, सैनिक छावनियों में, भारतीय सैनिकों और देशभक्त युवकों को आजादी के लिए होने वाली क्रान्ति के लिए तैयार करने भेज दिया गया।

इस प्रकार प्रतापसिंह बीस साल की उम्र में राजपूताने के क्रान्तिकारियों का सर्वमान्य नेता बन गया।

श्री रासबिहारी बोस चाहते थे कि कोई ऐसा काम किया जाए कि अंग्रेजी सरकार की धाक समाप्त हो जाए और भारतवासियों में अंग्रेजों के खिलाफ उठने की शक्ति पैदा हो। यह अवसर भी जल्दी ही मिल गया। अंग्रेजों ने कलकत्ते से बदलकर दिल्ली को भारतवर्ष की राजधानी बनाया। वाइसराय लार्ड हार्डिंग बड़ी ताम-झाम से दिल्ली आने वाले थे। सरकार ने इस अवसर पर ऐसा प्रबंध किया जिसे देखकर भारतवासी चकित रह जाएं। इसलिए सभी देशी नरेश, सेना के बड़े अधिकारी, व्यापारी, जमींदार, जागीरदार आदि बुलाये गये थे। दूसरी ओर रासबिहारी बोस,

प्रतापसिंह, जोरावरसिंह (प्रतापसिंह के चाचाजी) बसंत कुमार विश्वास, अमीरचंद, बालमुकुंद अवधबिहारी आदि की लार्ड पर बम फेंकने की योजना तैयार थी ।

दिल्ली स्टेशन दुल्हन की तरह सजा था । लार्ड हार्डिंग विशेष गाड़ी से आये । लाल किले से तोपें गड़गड़ाईं । सभी देशी नरेशों और अधिकारियों ने लार्ड की अगवानी की । वाइसराय साहब को ऊंचे हाथी पर सजे हौदे पर बिठाया गया । फौज तथा बैंड-बाजे के साथ जुलूस सरकने लगा । लगभग सारे भारतवर्ष से आये लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी । जब जुलूस चांदनी चौक में पंजाब नेशनल बैंक भवन के निकट पहुंचा तो एक भयानक धमाका हुआ । एक बम लार्ड के हौदे के पीछे लगा । बलरामपुर राज्य का जमादार महावीर सिंह मर कर हौदे में लटक गया । हौदे का पिछला भाग टूट गया । लार्ड हार्डिंग की पीठ व कंधे पर चोट आई और बेहोश होकर हौदे म

लुढ़क गया । सारे जुलूस में जैसे भूकम्प-सा आ गया। सब सड़कें, इमारतें पुलिस ने घेर लीं । पुलिस द्वारा ऐड़ी-चोटी का जोर लगाने पर भी बम फेंकने वाले का कोई पता नहीं मिला ।

कहते हैं यह आज तक रहस्य बना हुआ है कि बम किसने फेंका था। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बम रासबिहारी, प्रतापसिंह या उनके किसी साथी ने ही फेंका था।

इस हड़बड़ी में निकलकर प्रतापसिंह तथा जोरावरसिंह भाग कर यमुना नदी पर चले गए । नदी में बाढ़ थी । वे दोनों कई घंटों तक नदी में तैरते रहे । पुलिस के सिपाहियों को उनके प्रति संदेह हुआ । प्रतापसिंह तथा उसके चाचा जोरावरसिंह ने पुलिस के उन दो सिपाहियों का काम तमाम किया और नदी पार कर गये। अब रासबिहारी तथा प्रतापसिंह फिर से क्रान्ति-कार्य में जुट गये । प्रतापसिंह के पिता को आजन्म कारावास होने पर प्रताप ने जेल में सदेश भेजा—"आप चिंता न करें, अभी प्रतापसिंह जीवित है ।" प्रतापसिंह के पीछे भी पुलिस लगी थी। गिरफ्तारी का वारंट निकला हुआ था। परन्तु प्रतापसिंह अपनी जान पर खेलकर क्रान्तिकारी दल को आगे बढ़ाने में लगे हुए थे। इन्हीं क्रान्तिकारी कार्यों के लिए एक दिन प्रतापसिंह सिंध हैदराबाद से बीकानेर की ओर जा रहे थे। जोधपुर के निकट 'आशानाडा' स्टेशन के स्टेशन मास्टर से मिलने के लिये उतर पड़े । वह पहले क्रान्तिकारी दल का सदस्य था । उसके पास बम पकड़ा गया था । पुलिस के डर से घबरा कर वह पुलिस का भेदिया बन गया था परन्तु प्रतापसिंह को इस बात का पता नहीं था । स्टेशन मास्टर ने धोखा देकर प्रताप को पकड़वा दिया । उसे बरेली जेल भेजा गया । अंग्रेज सरकार प्रसन्न थी कि अब उन्हें अन्य क्रान्तिकारियों का पता चल जाएगा । प्रतापसिंह के बरेली जेल में पहुंचते ही भारत सरकार ने गुप्तचर विभाग के निदेशक को अपने दल सहित वहां भेजा । प्रतापसिंह को तरह-तरह के सब्ज-बाग दिखाये गये, लाखों रुपयों का इनाम का लालच देना चाहा । प्रताप की जब्त सम्पत्ति लौटाने का वचन दिया गया परन्तु प्रतापसिंह टस से मस नहीं हुआ । उसे कहा गया कि उसकी मां बहुत रोती रहती है । उसने उत्तर दिया, "मैं किसी और मां के रोने का कारण नहीं बन सकता ।" प्रतापसिंह को कठोर से कठोर यातनायें दी गईं परन्तु वह अपने विश्वास पर अडिग रहा। यातनाओं को सहते हुए वीर प्रतापसिंह अपनी जान पर खेल गया परन्तु अपने किसी भी साथी का भेद नहीं दिया । प्रतापसिंह की वीरता की प्रशंसा उस समय की भारत सरकार के गुप्तचर विभाग के निदेशक ने इन शब्दों में की- "मैंने आज तक प्रतापसिंह जैसा वीर और विलक्षण बुद्धि का बालक नहीं देखा। उसे तरह-तरह से सताए जाने में कमी नहीं रखी गई परन्तु वाह रे धीर ! टस से मस न हुआ । गजब का कष्ट सहने वाला था। हमारी सब चालें बेकार हुईं, हम सब हार गये । उसी को जान अपनी गंवानी पड़ी । वह विजयी हुआ ।"

योद्धा संत

अवध में स्वाधीनता संग्राम सन् 1857 से 1859 के अंत तक चला। इस संग्राम में अवध की बेगम को उत्तर प्रदेश के ताल्लुकदारों तथा जमींदारों से बहुत सहायता मिली। उन सामन्तों में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नाम था राजा बेणीमाधव वह शंकरपुर (अब रायबरेली, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के दक्षिण में लगभग 110 किलोमीटर दूर) का राजा था। लार्ड क्लाइव के अनुसार–"वह जब तक जीवित रहा, अंग्रेजों से जी-जान से लड़ता रहा और उन्हें चैन की सांस न लेने दी।"

अवध के अंग्रेजी राज्य में मिलने से पहले तक बेणीमाधव का राज्य 223 गांवों में फैला हुआ था। उसने अधिकांश गांव छोटे जमींदारों से अपनी शक्ति के बल पर जीते थे। उसके राज में शान्ति तथा सुख-चैन था। यदि कोई बहादुर बेणीमाधव के लिए बलिदान देता तो वह उसे तथा उसके घर वालों को मालामाल कर देता था।

बेणीमाधव निपुण प्रबंधक भी था। नबाव वाजिद अलीशाह ने उसे 'नाजिम' (प्रबंधक) नियुक्त किया। उसे 'दिलेर जंग' की उपाधि से विभूषित किया। अपना मान-रुतबा रखने के लिए उसने बहुत-सी सेना भरती कर रखी थी। तीन

किले बनवाये । शंकरपुर में राजधानी बनवाई। वह स्वयं एक किले में रहता था। वह किला घने जंगल में था। उसके चारों ओर गहरा नाला था। बेणीमाधव दुर्गा माता का अनन्य भक्त था । दुर्गा माता का मंदिर किले के अंदर था ।

जब अंग्रेजों ने अवध पर आक्रमण किया तो बेणीमाधव को 116 गांवों से हाथ धोना पड़ा । वीर राजपूत लगभग अपना आधा राज्य खोकर कैसे सुख की सांस ले सकता था। उसने अंग्रेजों से टक्कर लेने की ठान ली। उसने अवध की बेगम जीनत बेगम का साथ देने का प्रण लिया । अवध की बेगम ने अन्य जमीदारों तथा सामन्तों को अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने का आह्वान किया । बेणीमाधव को जमीदारों तथा सामन्तों का प्रमुख नियुक्त किया गया। कहते हैं बेणीमाधव जी के पास 20,000 से अधिक सैनिक थे। वे जहां भी जाते थे, 'फिरंगियों की धज्जियां' उड़ाने के नारे लगाते थे ।

कहने को फिरंगियों ने लखनऊ पर कब्जा कर लिया। परन्तु अवध का एक-चौथाई इलाका मरने-मारने पर तैयार था। उन सब में सशक्त सामन्त था बेणीमाधव।

कहते हैं बेणीमाधव के किले में 4,000 सैनिक, 2,000 घोड़े तथा 40 तोपें थीं, फिरंगी उसकी शक्ति से भली-भांति परिचित थे। उन्होंने बेणीमाधव को कई प्रलोभन दिए । परन्तु वह टस-से-मस नहीं हुआ ।

अंग्रेजों ने बेणीमाधव से कहीं अधिक सेना इकट्ठी की तथा आक्रमण की तैयारी करने लगे.... ।

बेणीमाधव भी कच्ची गोलियां नहीं खेल रहा था। आक्रमण से एक रात पहले वह अपने लाव-लश्कर के साथ किला खाली कर गया ।

किला खाली पाकर अंग्रेज बहुत सटपटाये। बेणीमाधव गया तो कहां गया?

छान-बीन के बाद गुप्तचरों ने बताया कि उसकी सेना गंगा नदी के किनारे बक्सर घाट पर है। अंग्रेजी सेना भी उधर कूच कर गई । घमासान युद्ध हुआ। बेणीमाधव के बहुत से सैनिक मारे गये । कई तोपें छिन गईं । अंग्रेजों की सफलता निकट थी। परन्तु बेणीमाधव हाथ न आया । वह अपने कुछ साथियों के साथ गंगा नदी पार कर चुका था। कहते हैं कि वह ढोंडिया खेड़ा से उत्तर-दक्षिण की ओर चला गया । नेपाल के राजा से भी उनका युद्ध हुआ। बेणीमाधव का भाई तथा पचास सैनिक भी मारे गये।

एक कथन के अनुसार बेणीमाधव नवम्बर 1859 में, सदा के लिए नेपाल चला गया।

स्थानीय कहावत है कि वह कई वर्ष बाद भगवे वस्त्रों में शंकरपुर गया । अपने पुराने मित्रों से मिला और अज्ञात दिशा में चला गया ।

वहां आज भी होली के पवित्र त्यौहार पर बेणीमाधव की वीरता के गीत गाये जाते हैं ।

एक स्वतंत्रता सेनानी

वह एक स्वतंत्रता सेनानी था। उसका नाम था गुरुचरण सिंह । उसका जन्म चक्रपरना गांव, जिला सियालकोट (पाकिस्तान) में हुआ । गुरुचरण सिंह के पिता का नाम अतर सिंह था । वह भाई परना, गुरु नानक के शिष्य तथा साथी के वंश से था। नए धर्म का प्रचारक होने के नाते, भाई परना सारे अफगानिस्तान में घूमा था। अपने धर्म के कई अनुयायी बनाये और धर्मशाला बनवाई ।

बचपन में गुरुचरण सिंह अपने पिता के साथ पंजाब के महान शासक रणजीत-सिंह की फौज में भर्ती होने के बाद काबुल के शिष्यों से मिलने जाता रहता था ।

फरवरी 1849 में गुजरात की लड़ाई में अंग्रेजों ने सिक्खों को परास्त किया । इससे न केवल सिक्खों की मर्यादा को क्षति पहुंची, बल्कि लाखों किसानों तथा कारीगरों पर दुःख के पहाड़ टूट पड़े । खालसा दल टूटने से उन्हें रोटी के लाले पड़ गए । अंग्रेजों ने राज के नाम पर जनता का शोषण किया । खेती-बाड़ी में भीड़, किसानों पर अत्याचार, घरेलू दस्तकारों की मृत्यु, गांव के लोगों की बेकारी तथा बेबसी देखी नहीं जाती थी। ऐसी बुरी हालत में बाबा रामसिंह के प्रेरणादायक नेतृत्व में कूकों द्वारा सिक्ख धर्म का पुनर्गठन आशा की किरण से कम न था ।

1872 में, कूका बगावत के समय गुरुचरण सिंह काबुल में था । बाबा रामसिंह का बर्मा में जिलावतन, कूकों की सामूहिक हत्या तथा अंग्रेजों द्वारा कूकों के अनुयाइयों को बंदी बना लेने से गुरुचरण सिंह के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा । अपनी वापसी के बाद वह धार्मिक आन्दोलन में जुट गया। पंजाब में अंग्रेजी राज के विरुद्ध क्रान्ति लाने के लिए उसने अपनी ऐड़ी चोटी का जोर लगा दिया।

सन् 1878-80 में भारत-अफगान लड़ाई शुरू हुई तो कूकों को सुनहरा मौका मिला कि अंग्रेजों से बदला ले सकें। पंजाब को अंग्रेजों के पंजे से मुक्त कराने के लिए रूस से मदद मांगने गुरुचरण सिंह को भेजा गया । रूसी शासकों को आश्वासन दिलाया गया कि भारत-अफगान लड़ाई के कारण उनकी फौजें अफगानिस्तान से होकर पंजाब जा सकती थीं । रूसी मदद मिलने पर, कूका दूत ने वचन दिया कि वे बगावत कर देंगे और अंग्रेज सेना को कुचल कर दम लेंगे। इस रूसी फौज को आगे बढ़ने में कठिनाई न होगी । जिस समय गुरुचरण सिंह को रूस भेजा गया तो उस समय वह 70 वर्ष के थे । फिर भी उन्होंने इस कठिन काम की परवाह न करते हुए अपना कर्तव्य निभाने का फैसला किया।

मध्य एशिया में एक अंग्रेज़ गुप्तचर के अनुसार वह (गुरुचरण सिंह) कूकों के नेता रामसिंह से हिन्दी में पत्र लाए। पत्र में कूकों के नेता के हस्ताक्षर थे। इस पत्र में रूसी सम्राट, गवर्नर जनरल तथा रूसी नेताओं को सलाम लिखा था। रामसिंह 2,15,000 बहादुर कूकों का आध्यात्मिक गुरु था। अत्याचारी अंग्रेज सरकार ने उसे रंगून में बंदी बना दिया.....

अंग्रेजों का गुप्तचर, गुलाब खां, गुरुचरण सिंह के छाया की तरह पीछे लगा रहा। यहां तक कि उसे गिरफ्तार करा दिया।

17 जनवरी, 1881 को चार्ल्स ब्राउन, पंजाब सरकार के अधिकारी, ने गुरुचरण सिंह से जेल में कुछ प्रश्न पूछे। उत्तर पाकर ब्राउन को शक हो गया कि गुरुचरण सिंह रूस किसी विशेष कार्य के लिए गया था ।

सीधे प्रश्न करके चार्ल्स ब्राउन गुरुचरण सिंह से सूचना पाने में असफल रहा। इसलिए गुलाब खां को भी बंदी बनाकर जेल में डाल दिया गया। गुलाब खां ने गुरुचरण सिंह को जेल में बताया, "उस पर, रूसी गुप्तचर होने का आरोप लगाया गया है और उसकी मुसीबतों का जिम्मेदार गुरुचरण सिंह है ।" गुरुचरण सिंह ने बात को सच मान लिया और बोला, "सारी लड़ाई नहीं हारी।" काफमैन का पत्र अंग्रेजों के हाथ नहीं लगा। वह पत्र मैणी से बर्मा में रामसिंह को भिजवाया गया था। जिन दो दूतों के हाथ वह पत्र भिजवाया गया, उन्हें बन्दी बनाया गया। परन्तु पत्र रामसिंह तक पहले ही पहुंच चुका था।

इस प्रकार, पंजाब सरकार को विश्वास हो गया कि अंग्रेजों के खिलाफ भारत में कूकों की सरगर्मियों का कारण गुरुचरण सिंह था ।

उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में एक सिक्ख देशभक्त का स्वप्न, रूस की मदद का प्रयास, विद्रोही कूकों का असफल आन्दोलन, उनका दुःख तकलीफ भरा जीवन इतिहास कैसे भुला सकता है? गुरुचरण सिंह ने अपनी मेहनत, प्रतिभा और योग्यता से बाहर स्वतन्त्रता संग्राम का कार्य भी चलाया। कूकों की सरगर्मियों ने दूर तक हलचल मचा दी--बर्मा से सेंटपीटर्सबर्ग तक ! भारत माता की बेड़ियां काटने के लिए जिन क्रान्तिकारियों ने विदेश से सहायता ली, उनमें गुरुचरण सिंह का महत्वपूर्ण स्थान कैसे भुलाया जा सकता है ।

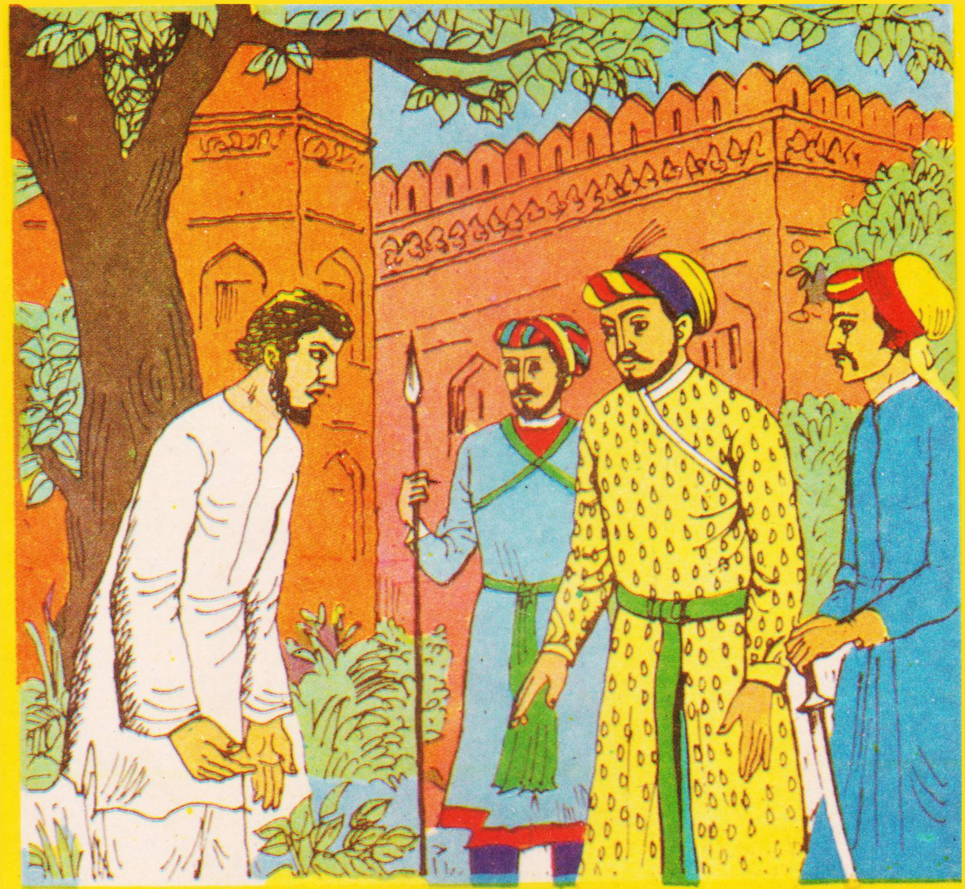

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार